[2019] 3 उम. नि. प. 317

गुरनाम सिंह (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा और अन्य

बनाम

लेहना सिंह (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा और अन्य

[2014 की सिविल अपील सं. 6567]

13 मार्च, 2019

न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव और न्यायमूर्ति एम. आर. शाह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 – द्वितीय अपील – उच्च न्यायालय की शक्तियां – स्थायी व्यादेश – द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय की अधिकारिता उस मामले तक सीमित होती है जिसमें विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित होता हो और उच्च न्यायालय साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन पर आधारित प्रथम अपील न्यायालय के सकारण आदेश में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है और न ही अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन कर सकता है ।

प्रत्यर्थी-मूल वादी ने मूल प्रतिवादियों को वादगत भूमि से उसे बेकब्ज़ा करने से अवरुद्ध करते हुए स्थायी व्यादेश के लिए प्रथम श्रेणी उप-न्यायाधीश के न्यायालय में एक वाद फाइल किया । मूल वादी का पक्षकथन यह था कि वह और उसका भाई भगवान सिंह **उर्फ** निक्का सिंह वादगत संपत्ति के स्वामी और उसमें काबिज़ थे । भगवान सिंह उर्फ निक्का सिंह की मृत्यु हो गई और वह अपने पीछे वादी को अपने एकमात्र उत्तराधिकारी के रूप में छोड़ गया । भगवान सिंह की कोई पत्नी या संतान नहीं थी । प्रतिवादी, जिनका वादगत भूमि से कोई संबंध नहीं था, उसे वहां से बलपूर्वक बेकब्ज़ा करना चाहते थे । अतः, उसने प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए उपर्युक्त वाद फाइल किया । प्रतिवादी विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया । प्रतिवादियों द्वारा इस बात से इनकार किया गया कि वादी मृत भगवान सिंह का उत्तराधिकारी था । प्रतिवादियों के अनुसार, भगवान सिंह ने अपनी मृत्यु से पूर्व

तारीख 17 जनवरी, 1980 को प्रतिवादी सं. 2 से 6 के पक्ष में एक वसीयत निष्पादित की थी । प्रतिवादियों के अनुसार, चूंकि सभी प्रतिवादियों ने भगवान सिंह के जीवनकाल में उसकी सेवा की थी इसलिए उसने की गई सेवा के कारण प्रतिवादी सं. 2 से 6 के पक्ष में वसीयत निष्पादित की थी । प्रतिवादियों का पक्षकथन यह था कि इससे पूर्व भी, भगवान सिंह **उर्फ** निक्का सिंह ने तारीख 17 अगस्त, 1979 को एक वसीयत निष्पादित की थी किन्तु वह अरजिस्ट्रीकृत रही । यह स्वीकार किया गया था कि भगवान सिंह के जीवनकाल में, वादी और भगवान सिंह, दोनों ने वादगत भूमि पर संयुक्त रूप से खेती की थी । प्रतिवादियों के अनुसार, भगवान सिंह की मृत्यु के पश्चात्, प्रतिवादी सं. 2 से 6 को भगवान सिंह के आधे हिस्से का कब्ज़ा मिल गया । अनुकल्पतः, प्रतिवादियों ने यह अभिवाक् किया कि भले ही यह साबित कर दिया गया था कि वादगत भूमि पर मूल वादी का कब्जा है, तो भी प्रतिवादी सं. 2 से 6 वादगत भूमि के उस आधे हिस्से पर संयुक्त कब्ज़े के हकदार थे जो कि मृतक भगवान सिंह का था । मूल वादी ने फाइल किए गए प्रत्युत्तर में इस बात से इनकार किया कि भगवान सिंह, मृतक ने प्रतिवादी सं. 2 से 6 के पक्ष में तारीख 17 जनवरी, 1980 को वसीयत निष्पादित की थी । उसने यह अभिवाक् किया कि भगवान सिंह कोई वसीयत करने की स्थिति में नहीं था । वास्तव में, प्रतिवादियों द्वारा विष देकर भगवान सिंह की हत्या कर दी गई थी और यह कि प्रतिवादियों को मृतक भगवान सिंह की हत्या के लिए अभियोजित किया गया था । यह कि प्रतिवादियों ने भगवान सिंह की ओर से वसीयत की कूटरचना की और कूटरचित दस्तावेज़ की आड़ में वे उसे बलपूर्वक बेकब्ज़ा करना चाहते हैं । इस बात से भी इनकार किया गया था कि वादगत भूमि पर भगवान सिंह के हिस्से के संबंध में प्रतिवादियों का कब्ज़ा था । दोनों पक्षकारों ने विचारण न्यायालय द्वारा विरचित विवाद्यकों के संबंध में साक्ष्य पेश किए । यह कि विचारण न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने और संबंधित पक्षकारों की ओर से किए गए निवेदनों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि वादी यथा-प्रार्थित स्थायी व्यादेश का हकदार है । परिणामस्वरूप, विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद डिक्री कर दिया । प्रतिवादियों द्वारा प्रथम

अपील न्यायालय के समक्ष फाइल की गई अपील में, प्रथम अपील न्यायालय ने ऐसे अकाट्य कारण देकर, जो साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन पर आधारित थे, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलट दिया । प्रथम अपील न्यायालय ने प्रतिवादियों द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर कर ली और परिणामस्वरूप विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अभिखंडित और अपास्त करते हुए वाद को खारिज कर दिया । वादी ने, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष नियमित द्वितीय अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा उस द्वितीय अपील को मंजूर कर लिया और विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा वाद को खारिज करते हुए पारित किए गए निर्णय और डिक्री को अभिखंडित और अपास्त कर दिया और परिणामस्वरूप विचारण न्यायालय द्वारा वाद को डिक्री करते हुए पारित निर्णय और डिक्री को प्रत्यावर्तित कर दिया । मूल प्रतिवादियों ने, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए प्रस्तुत अपील फाइल की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करके गलती की है । उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित उन निष्कर्षों में, जो साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् निकाले गए थे, जो कि प्रथम अपील न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनुज्ञेय था, हस्तक्षेप करके तात्विक रूप से गलती की है । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अकाट्य कारण दिए गए थे । प्रथम अपील न्यायालय ने, तथाकथित संदेहास्पद परिस्थितियों पर विस्तारपूर्वक विचार किया, जिन पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा महत्व दिया गया था और इसके पश्चात् उसने यह निष्कर्ष निकाला कि वसीयत, जो कि एक रजिस्ट्रीकृत वसीयत थी, वास्तविक थी और किन्हीं संदेहास्पद परिस्थितियों से ग्रस्त नहीं थी । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को इसमें

इसके ऊपर उद्धृत किया गया है । अतः, उच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील का विनिश्चय करते हुए आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित करते समय अपनी अधिकारिता से परे कार्य किया है । धारा 100 के अनुसार सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील को ग्रहण करने संबंधी उच्च न्यायालय की अधिकारिता केवल ऐसी अपीलों तक सीमित है जिनमें विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित होता है । उच्च न्यायालय द्वारा विरचित विधि के सारवान् प्रश्नों का परिशीलन करने पर हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील का विनिश्चय करते समय विरचित किए गए विधि के प्रश्नों को विधि के सारवान् प्रश्न बिल्कुल भी नहीं कहा जा सकता है । उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने का यह एक उपयुक्त मामला है क्योंकि उच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील को मंजूर करते समय अपनी अधिकारिता से परे कार्य किया है । (पैरा 28, 29 और 30)

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन किसी अपील में उच्च न्यायालय की अधिकारिता यथार्थतः उसी मामले तक सीमित है जिसमें विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित होता है और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील का विनिश्चय करते समय उच्च न्यायालय के लिए अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करना और निचले न्यायालयों और/या प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना अनुज्ञेय नहीं है और यदि प्रथम अपील न्यायालय ने न्यायिक रीति में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया है तो उसके विनिश्चय के बारे में यह अभिलिखित नहीं किया जा सकता है कि वह विधि या प्रक्रिया संबंधी किसी ऐसी त्रुटि से ग्रस्त है जिसके कारण द्वितीय अपील में उसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है । उच्च न्यायालय, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन विधि का या तो सारवान् प्रश्न विरचित किए बिना या विधि का गलत सारवान् प्रश्न विरचित करके तथ्य संबंधी समवर्ती निष्कर्षों और/या प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में फेरफार कर रहे हैं । (पैरा 32)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 5 एस. सी. सी. 264 : **नारायणन् राजेन्द्रन** बनाम **लक्ष्मी सरोजिनी** ;	32
[2000]	(2000) 1 एस. सी. सी. 434 : **ईश्वर दास जैन** बनाम **सोहन लाल** ;	14,27
[1999]	(1999) 3 एस. सी. सी. 722 : **कोंडिबा दगादु कदम** बनाम **सावित्रीबाई सोपान गूजर** ;	14,26
[1997]	(1997) 4 एस. सी. सी. 713 : **पंचुगोपाल बरुआ** बनाम **उमेश चन्द्र गोस्वामी** ;	14
[1963]	ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1633 : **मदामांची रामप्पा** बनाम **मुथालुरू बोजप्पा** ।	29

सिविल अपीली अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 6567.

1985 की सिविल नियमित द्वितीय अपील सं. 2191 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की चंडीगढ़ न्यायपीठ के तारीख 27 नवम्बर, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री मनोज स्वरूप, (सुश्री) मानसी जैन और मुकुल कुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अमित शर्मा, संदीप सिंह और (सुश्री) ज्योति मेंहदीरत्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – मूल प्रतिवादियों ने, 1985 की सिविल नियमित द्वितीय अपील सं. 2191 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की चंडीगढ़ न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 27 नवम्बर, 2007 के उस निर्णय और आदेश से जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी-मूल प्रतिवादी (अब मृत और जिसका प्रतिनिधित्व विधिक वारिसों

द्वारा किया गया है) द्वारा फाइल की गई उक्त अपील मंजूर कर ली है और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अभिखंडित और अपास्त कर दिया है और परिणामस्वरूप विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को प्रत्यावर्तित कर दिया है, व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए प्रस्तुत अपील फाइल की है ।

2. प्रस्तुत अपील फाइल करने से संबंधित तथ्य संक्षेप में निम्न प्रकार हैं : यह कि प्रत्यर्थी-मूल वादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'मूल वादी' कहा गया है) ने मूल प्रतिवादियों को वादगत भूमि से उसे बेकब्ज़ा करने से अवरुद्ध करते हुए स्थायी व्यादेश के लिए संगरूर के प्रथम श्रेणी उप न्यायाधीश के न्यायालय में एक वाद फाइल किया । मूल वादी का पक्षकथन यह था कि वह और उसका भाई भगवान सिंह **उर्फ** निक्का सिंह वादगत संपत्ति के स्वामी और उसमें काबिज़ थे । भगवान सिंह **उर्फ** निक्का सिंह की मृत्यु हो गई और वह अपने पीछे वादी को अपने एकमात्र उत्तराधिकारी के रूप में छोड़ गया । भगवान सिंह की कोई पत्नी या संतान नहीं थी । प्रतिवादी, जिनका वादगत भूमि से कोई संबंध नहीं था, उसे वहां से बलपूर्वक बेकब्ज़ा करना चाहते थे । अतः, उसने प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए उपर्युक्त वाद फाइल किया ।

3. यह कि प्रतिवादी विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया । प्रतिवादियों द्वारा इस बात से इनकार किया गया कि वादी मृत भगवान सिंह का उत्तराधिकारी था । प्रतिवादियों के अनुसार, भगवान सिंह ने अपनी मृत्यु से पूर्व तारीख 17 जनवरी, 1980 को प्रतिवादी सं. 2 से 6 के पक्ष में एक वसीयत निष्पादित की थी । प्रतिवादियों के अनुसार, चूंकि सभी प्रतिवादियों ने भगवान सिंह के जीवनकाल में उसकी सेवा की थी इसलिए उसने की गई सेवा के कारण प्रतिवादी सं. 2 से 6 के पक्ष में वसीयत निष्पादित की थी । प्रतिवादियों का पक्षकथन यह था कि इससे पूर्व भी, भगवान सिंह **उर्फ** निक्का सिंह ने तारीख 17 अगस्त, 1979 को एक वसीयत निष्पादित की थी किन्तु वह अरजिस्ट्रीकृत रही । यह स्वीकार किया गया था कि भगवान सिंह के जीवनकाल में, वादी और भगवान सिंह, दोनों ने वादगत भूमि पर संयुक्त रूप से खेती की थी ।

प्रतिवादियों के अनुसार, भगवान सिंह की मृत्यु के पश्चात्, प्रतिवादी सं. 2 से 6 को भगवान सिंह के आधे अंश का कब्ज़ा मिल गया । अनुकल्पतः, प्रतिवादियों ने यह अभिवाक् किया कि भले ही यह साबित कर दिया गया था कि वादगत भूमि पर मूल वादी का कब्जा है, तो भी प्रतिवादी सं. 2 से 6 वादगत भूमि के उस आधे हिस्से पर संयुक्त कब्ज़े के हकदार थे जो कि मृतक भगवान सिंह का था ।

4. यह कि मूल वादी ने फाइल किए गए प्रत्युत्तर में इस बात से इनकार किया कि भगवान सिंह, मृतक ने प्रतिवादी सं. 2 से 6 के पक्ष में तारीख 17 जनवरी, 1980 को वसीयत निष्पादित की थी । उसने यह अभिवाक् किया कि भगवान सिंह कोई वसीयत करने की स्थिति में नहीं था । वास्तव में, प्रतिवादियों द्वारा विष देकर भगवान सिंह की हत्या कर दी गई थी और यह कि प्रतिवादियों को मृतक भगवान सिंह की हत्या के लिए अभियोजित किया गया था । यह कि प्रतिवादियों ने भगवान सिंह की ओर से वसीयत की कूटरचना की और कूटरचित दस्तावेज़ की आड़ में वे उसे बलपूर्वक बेकब्ज़ा करना चाहते हैं । इस बात से भी इनकार किया गया था कि वादगत भूमि पर भगवान सिंह के हिस्से के संबंध में प्रतिवादियों का कब्ज़ा था ।

5. यह कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :-

"1. क्या वादी मृतक भगवान सिंह का एकमात्र वारिस है ?

2. क्या वादी का विवादग्रस्त संपत्ति पर कब्ज़ा है ?

3. क्या वादी प्रार्थित अनुतोष का हकदार है ?

4. क्या मृतक भगवान सिंह ने, जैसा कि लिखित कथन में अभिकथन किया गया है, प्रतिवादी सं. 2 से 6 के पक्ष में कोई विधिमान्य वसीयत की थी ?

5. यदि विवाद्यक सं. 2 वादी के पक्ष में साबित हो जाता है तो क्या प्रतिवादी सं. 2 से 6 वादगत भूमि पर संयुक्त कब्ज़े के हकदार हैं ?

6. क्या प्रतिवादी, विवाह के मामले में पंजाब पेप्सू कस्टमरी ला द्वारा शासित होते हैं ? यदि हां, तो उसका प्रभाव ?

7. अनुतोष ।"

6. यह कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में निम्नलिखित अतिरिक्त विवाद्यक विरचित किया :–

"4. क. क्या प्रतिवादियों ने भगवान सिंह की हत्या कारित की है ? यदि हां तो उसका प्रभाव ?"

7. दोनों पक्षकारों ने विरचित विवाद्यकों के संबंध में साक्ष्य पेश किए । यह कि विचारण न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने और संबंधित पक्षकारों की ओर से विद्वान् अधिवक्ताओं द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार करने के पश्चात्, विवाद्यक सं. 1,4,2,5,6 और 3 वादी के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया । विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 4क को प्रतिवादियों के पक्ष में और वादी के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया । परिणामस्वरूप, विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 3 को वादी के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया और यह अभिनिर्धारित किया कि वादी यथा-प्रार्थित स्थायी व्यादेश का हकदार है । परिणामस्वरूप, विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद डिक्री कर दिया ।

8. प्रतिवादियों द्वारा प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष फाइल की गई अपील में, प्रथम अपील न्यायालय ने ऐसे अकाट्य कारण देकर, जो साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन पर आधारित थे, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलट दिया । प्रथम अपील न्यायालय ने प्रतिवादियों द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर कर ली और परिणामस्वरूप विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अभिखंडित और अपास्त करते हुए वाद को खारिज कर दिया ।

9. वादी ने, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष नियमित द्वितीय अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित

निर्णय और आदेश द्वारा उस द्वितीय अपील को मंजूर कर लिया और विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा वाद को खारिज करते हुए पारित किए गए निर्णय और डिक्री को अभिखंडित और अपास्त कर दिया और परिणामस्वरूप विचारण न्यायालय द्वारा वाद को डिक्री करते हुए पारित निर्णय और डिक्री को प्रत्यावर्तित कर दिया ।

10. मूल प्रतिवादियों ने, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट महसूस करते हुए प्रस्तुत अपील फाइल की है ।

11. अपीलार्थी-मूल प्रतिवादियों की ओर से विद्वान् अधिवक्ता सुश्री मानसी जैन और प्रत्यर्थी-मूल वादी की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री अमित शर्मा उपस्थित हुए हैं ।

12. मूल प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता सुश्री जैन ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील को मंजूर करके और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित सकारण निर्णय और आदेश को अभिखंडित और अपास्त करके गंभीर त्रुटि कारित की है ।

13. मूल प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता सुश्री जैन की ओर से बलपूर्वक यह दलील दी गई है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 की परिधि और व्याप्ति के परे है । सुश्री जैन द्वारा बलपूर्वक यह दलील दी गई है कि उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील को मंजूर और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अभिखंडित और अपास्त करते समय अभिलेख पर मौजूद संपूर्ण साक्ष्य का इस प्रकार पुनर्मूल्यांकन किया मानो उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन प्रथम अपील का विनिश्चय कर रहा था ।

14. मूल प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता सुश्री जैन ने बलपूर्वक यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील का विनिश्चय करते समय इस तथ्य का समुचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया है कि उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की

धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील का विनिश्चय कर रहा था और इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए परिसीमाओं द्वारा आबद्ध था । यह दलील दी गई है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में, उच्च न्यायालय को साक्ष्य का मूल्यांकन/पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता नहीं थी और उच्च न्यायालय की अपीली अधिकारिता विधि के सारवान् प्रश्न तक निर्बंधित था । यह दलील दी गई है कि इसलिए उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश को अभिखंडित करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन अपनी अधिकारिता के परे कार्य किया है और इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश केवल इन आधारों पर अभिखंडित और अपास्त किया जाना चाहिए । विद्वान् अधिवक्ता सुश्री जैन ने अपनी उपर्युक्त दलीलों के समर्थन में **पंचुगोपाल बरुआ** बनाम **उमेश चन्द्र गोस्वामी**[1], **कोंडिबा दगादु कदम** बनाम **सावित्रीबाई सोपान गूजर**[2] और **ईश्वर दास जैन** बनाम **सोहन लाल**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया है ।

15. मूल प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता सुश्री जैन ने इसके अलावा यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश गुणागुण के आधार पर भी कायम रखे जाने योग्य नहीं है । सुश्री जैन द्वारा यह दलील दी गई है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी सं. 2 से 6 के पक्ष में निष्पादित वसीयत को स्वीकार न करते हुए निम्नलिखित संदेहास्पद परिस्थितियां विरचित कीं :-

> "(i) वसीयत में वसीयतकर्ता द्वारा वादी को जायदाद से वंचित किए जाने के बारे में कोई उल्लेख नहीं है यद्यपि अभिलेख पर यह साबित हो गया था कि वादी ही वसीयतकर्ता का सगा भाई था और वह उसकी सेवा कर रहा था तथा उसकी भूमि में खेती कर

---

[1] (1997) 4 एस. सी. सी. 713.

[2] (1999) 3 एस. सी. सी. 722.

[3] (2000) 1 एस. सी. सी. 434.

रहा था । वादी द्वारा भूमि पर खेती किए जाने संबंधी तथ्य राजस्व अभिलेख से साबित हो गया था और इसलिए वसीयत में यह प्रसंविदा कि भूमि पर प्रतिवादियों द्वारा खेती की जा रही थी, तथ्यात्मक रूप से गलत था ।

(ii) वसीयत में यह उल्लेख किया गया है कि यह प्रथम और अंतिम वसीयत थी जबकि प्रतिवादियों का पक्षकथन यह था कि वसीयतकर्ता द्वारा इससे पहले भी एक वसीयत निष्पादित की गई थी ।

(iii) गुरनाम सिंह के पिता के नाम का उल्लेख भी गलत रूप में किया गया था ।

(iv) जैसा कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा मत व्यक्त किया गया है, वसीयत में यह कहा गया है कि वसीयतकर्ता ने वसीयत को शीर्षयुक्त किया था और उसे समझ लिया था तथा उस पर साक्षियों की उपस्थिति में अपने अंगूठे का निशान लगाया था और साक्षियों ने भी उसकी उपस्थिति में उसे अधिप्रमाणित किया था । वसीयत को साबित करने के लिए यह कथन आवश्यक नहीं है और इसलिए विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह राय बनाई की वसीयत में इस प्रकार की सुविधा से उसकी प्रमाणिकता पर संदेह उत्पन्न होता है । अतः, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि एक षड्यंत्र रचकर वसीयत का मंच-प्रबंधन किया गया था और इसीलिए डी.डब्ल्यू.3 ने अकेले गुप्त रूप से निक्का सिंह को गांव से एक कार में लिया और डी.डब्ल्यू.4 जोगिन्दर सिंह भवानीगढ़ में पहले ही उपस्थित था, याची-लेखक के साथ मेलजोल किया और संव्यवहार को सुनिश्चित कराया ।

(v) सभी साक्षियों ने यह कथन किया है कि उस समय निक्का सिंह का स्वास्थ्य ठीक था, जो कि स्वीकार्य नहीं है क्योंकि निक्का सिंह, स्वीकृततः कैंसर रोग से पीड़ित था और टी.बी. का भी रोगी था ।

(vi) विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा यह भी मत व्यक्त

किया गया था कि डी.डब्ल्यू.1 ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि उसने निक्का सिंह की मृत्यु से पूर्व 4-5 खाली कागज़ों पर उसके अंगूठे के निशान प्राप्त कर लिए थे ।

(vii) जिस तरीके से वसीयत निष्पादित की गई थी वह अपने आप में एक संदेहास्पद परिस्थिति है और विचारण न्यायालय द्वारा उक्त वसीयत को खारिज करने के लिए इस परिस्थिति को ध्यान में लिया गया था ।"

16. मूल प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल सुश्री जैन ने यह दलील दी है कि उपर्युक्त सभी परिस्थितियों पर, जो कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा संदेहास्पद परिस्थितियां पाई गई थीं, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा कार्यवाही की गई जिसने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के बाद अपने कारण दिए । यह दलील दी गई है कि प्रथम अपील न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में मताभिव्यक्ति कीं और अभिनिर्धारित किया :-

"1. मात्र इस कारण कि वसीयत में लेहना सिंह, जो कि भगवान सिंह का, जिसे इसमें इसके पश्चात् वसीयतकर्ता कहा गया है, नैसर्गिक वारिस है, का उल्लेख नहीं किया गया है, उसे संदेहास्पद नहीं बना देता है ।

2. वसीयत को मुख्य रूप से मात्र वसीयत, प्रदर्श डी-2 के मुख्य भाग में दिए गए विवरणों के आधार पर संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा हुआ घोषित करना निराधार है और इसलिए, वसीयत एक रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज़ है और इसे अनुप्रमाणक साक्षियों, डी.डब्ल्यू. 3 और डी.डब्ल्यू. 4 द्वारा सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है ।

3. वसीयत में ऐसा कोई विवरण नहीं है कि वसीयतकर्ता रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज़ द्वारा नियत वसीयत को रद्द करेगा जिसका यह अर्थ होगा कि वसीयत संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है ।

4. गुरनाम सिंह के पिता का नाम मेहर सिंह की बजाय देवा सिंह वर्णित करना वसीयत में किया गया ऐसा कोई विवरण नहीं है

जिसका यह अर्थ लगाया जाए कि वसीयत संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है ।

5. वसीयत के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि जब वसीयत लिखी गई थी तब उस पर दो स्थानों पर अंगूठे के निशान थे, जब वसीयत संपूर्ण रूप से लिखी गई और जब उसे अनुप्रमाणक साक्षियों की उपस्थित में वसीयतकर्ता को पढ़कर सुनाया गया ।

6. मात्र इस कारण की वसीयतकर्ता किसी बीमारी से ग्रस्त था, इसका यह अर्थ नहीं है कि उसकी वसीयत करने की क्षमता को प्रश्नगत किया जा सकता है ।

7. प्रत्यर्थी द्वारा यह दर्शित करने के लिए फाइल पर कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया गया है कि डी.डब्ल्यू. 3 और डी.डब्ल्यू.4 उसके प्रति किसी प्रकार का विद्वेष रखते थे, इन साक्षियों का शपथित परिसाक्ष्य निसंदिग्ध और अविचलित रहता है ।

डी.डब्ल्यू. 3 और डी.डब्ल्यू. 4, जो कि सम्मानीय स्वतंत्र साक्षी हैं और उनका प्रत्यर्थी के प्रति कोई विद्वेष नहीं है ।"

17. मूल प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता सुश्री जैन द्वारा यह दलील दी गई है कि इसलिए जब प्रथम अपील न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात्, जो कि इसलिए अनुज्ञेय था क्योंकि प्रथम अपील न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन अपील न्यायालय था, अपने निष्कर्ष और तर्काधार अभिलिखित किए तब उसे उच्च न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में अपास्त किए जाने की आवश्यकता नहीं थी । यह दलील दी गई है कि द्वितीय अपील का विनिश्चय करते समय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन पूर्णतः अननुज्ञेय है । उपर्युक्त दलीलें देते हुए यह प्रार्थना की गई है कि प्रस्तुत अपील मंजूर की जाए और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को अभिखंडित और अपास्त किया जाए तथा विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को प्रत्यावर्तित किया जाए और परिणामस्वरूप वाद को खारिज किया जाए ।

18. प्रत्यर्थी-मूल वादी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री अमित शर्मा ने प्रस्तुत अपील का विरोध करते हुए बलपूर्वक यह दलील दी है कि मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में और साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् और यह निष्कर्ष निकालने के पश्चात् कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित हैं, उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप करके ठीक किया है और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को प्रत्यावर्तित करके ठीक किया है ।

19. विद्वान् अधिवक्ता श्री अमित शर्मा द्वारा यह भी दलील दी गई है कि विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 17 जनवरी, 1980 की वसीयत को संदेहास्पद अभिनिर्धारित करने के लिए अकाट्य कारण दिए गए थे और विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर थे और जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही मत व्यक्त किया गया है, प्रथम अपील न्यायालय का ऐसे निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना, जो कि साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अभिलिखित किए गए थे, न्यायोचित नहीं था ।

20. मूल वादी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री शर्मा द्वारा यह दलील भी दी गई है कि वसीयतकर्ता, अभिकथित वसीयत के निष्पादन के समय वसीयत निष्पादित करने की स्थिति में नहीं था क्योंकि वह कैंसर की बीमारी से ग्रस्त था और वह टी.बी. का भी रोगी था ।

21. मूल वादी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री शर्मा द्वारा यह दलील भी दी गई है कि प्रतिवादी साक्षी 1 ने भी अपने अभिसाक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि निक्का सिंह की मृत्यु से पूर्व उसने 4-5 खाली कागज़ों पर उसके अंगूठे के निशान ले लिए थे । यह दलील दी गई है कि अभिकथित वसीयत में अनेक कमियां हैं, अर्थात्, यद्यपि वसीयत में यह कथन किया गया था कि प्रतिवादियों द्वारा भूमि में खेती की जा रही थी तथापि, वास्तव में वादी उस भूमि में खेती कर रहा था; यह कि वसीयत में यह उल्लेख किया गया था कि

यह प्रथम और अंतिम वसीयत थी जबकि प्रतिवादियों के अनुसार, वसीयतकर्ता द्वारा इससे पूर्व भी एक वसीयत निष्पादित की गई थी और गुरनाम सिंह के पिता के नाम का उल्लेख गलत रूप में किया गया था । यह दलील दी गई है कि इसलिए, जैसा कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा ठीक ही यह मत व्यक्त किया गया है, वसीयत का निष्पादन संदेहास्पद परिस्थितियों में किया गया था और इसलिए विद्वान् विचारण न्यायालय ने उस वसीयत को नामंजूर करके ठीक किया था । यह दलील दी गई है कि प्रथम अपील न्यायालय ने उपर्युक्त सुस्पष्ट संदेहास्पद परिस्थितियों के बावजूद वसीयत को वास्तविक ठहराया और इसलिए उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप करके ठीक किया है ।

22. मूल वादी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री शर्मा ने इसके अलावा यह दलील दी है कि विद्वान् विचारण न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना न्यायोचित था कि वसीयतकर्ता की बीमारी के कारण वसीयत संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई थी । यह दलील दी गई है कि वसीयतकर्ता स्वीकृततः कैंसर रोग और टी.बी. से ग्रस्त था और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा अनुप्रमाणक साक्षियों के इस साक्ष्य को कि उसकी मानसिक दशा ठीक थी, अनदेखा करके ठीक किया गया था ।

23. उपर्युक्त दलीलें देते हुए यह प्रार्थना की जाती है कि प्रस्तुत अपील खारिज कर दी जाए ।

24. मूल वादी और प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ताओं की विस्तारपूर्वक सुनवाई की गई है । हमने विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिकी, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश पर विस्तारपूर्वक विचार किया है ।

25. प्रारंभ में, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि तारीख 17 जनवरी, 1980 की वसीयत को, जो कि मूल प्रतिवादी सं. 2 से 6 के पक्ष में निष्पादित की गई थी, संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई थी और इसलिए उसने

उक्त वसीयत पर विश्वास नहीं किया था ।

26. विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा जिन संदेहास्पद परिस्थितियों पर विचार किया गया था उनका वर्णन/कथन इसमें इसके ऊपर किया गया है । प्रथम अपील न्यायालय ने, अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् और ऐसी प्रत्येक अभिकथित संदेहास्पद परिस्थिति पर विचार करने के पश्चात्, जिन पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया गया था, अकाट्य कारण देते हुए वसीयत को वास्तविक ठहराया था और परिणामस्वरूप विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों से सहमत नहीं हुआ था । तथापि, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय ने, आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप किया । उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करते समय, ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को उलटते हुए, अभिलेख पर विद्यमान संपूर्ण साक्ष्य का फिर से मूल्यांकन किया, जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनुज्ञेय नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित करते समय इस तथ्य का बिल्कुल भी मूल्यांकन नहीं किया है कि उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील का न कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन प्रथम अपील का विनिश्चय कर रहा था । इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अधिकथित विधि के अनुसार, 1976 के संशोधन के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ग्रहण करने संबंधी उच्च न्यायालय की अधिकारिता वहां तक सीमित है जब द्वितीय अपील में विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित हो । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए 'विधि के सारवान् प्रश्न' की विद्यमानता अनिवार्य है । जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **कोंडिबा दगादु कदम** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में, उच्च न्यायालय तब तक प्रथम अपील

न्यायालय की राय के स्थान पर अपनी राय प्रतिस्थापित नहीं कर सकता जब तक कि वह यह निष्कर्ष नहीं निकालता कि निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण थे, क्योंकि :

(i) वे लागू विधि के आज्ञापक उपबंधों के प्रतिकूल हैं;

या

(ii) उच्चतम न्यायालय द्वारा उद्घोषित विधि के प्रतिकूल हैं;

या

(iii) अग्राह्य साक्ष्य पर आधारित हैं या किसी साक्ष्य के बिना हैं ।

इस न्यायालय द्वारा उपर्युक्त विनिश्चय में यह मत भी व्यक्त किया गया है कि यदि प्रथम अपील न्यायालय ने अपने विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायिक रीति में किया है तो उसके विनिश्चय के बारे में यह अभिलिखित नहीं किया जा सकता है कि वह विधि या प्रक्रिया की किसी त्रुटि से ग्रस्त है और द्वितीय अपील में उसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि यह द्वितीय अपील में हस्तक्षेप करने की बात को न्यायोचित ठहराने वाला विधि का कोई प्रश्न नहीं है कि विचारण न्यायालय इससे भिन्न रूप में विनिश्चय कर सकता था ।

27. इस न्यायालय द्वारा **ईश्वर दास जैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि कब यह कहा जा सकता है कि विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत हुआ है । उपर्युक्त विनिश्चय में, इस न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से निम्न प्रकार मताभिव्यक्ति की और अभिनिर्धारित किया :-

> "सिविल प्रक्रिया संहिता में 1976 के संशोधन के पश्चात् उसकी धारा 100 के अधीन उच्च न्यायालय के लिए विधि का सारवान् प्रश्न विरचित करना आवश्यक है और ऐसा किए बिना प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय को उलटना अनुज्ञेय नहीं है । ऐसी दो स्थितियां हैं जिनमें तथ्य संबंधी निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना अनुज्ञेय है । प्रथम स्थिति वह है जब ऐसे तात्विक और सुसंगत साक्ष्य पर विचार न किया गया हो, जिस पर यदि विचार

किया गया होता तो उसके परिणामस्वरूप विपरीत निष्कर्ष निकल सकेगा । वह दूसरी स्थिति जिसमें तथ्य संबंधी निष्कर्षों में हस्तक्षेप अनुज्ञेय है, यह है जहां अपील न्यायालय द्वारा अग्राह्य साक्ष्य का अवलंब लेते हुए निष्कर्ष निकाला गया है, जिसका यदि लोप किया गया होता तो विपरीत निष्कर्ष संभव था । उपर्युक्त दोनों स्थितियों में से किसी भी स्थिति में विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत हो सकता है ।"

28. इस न्यायालय द्वारा उपर्युक्त विनिश्चयों में अधिकथित विधि को प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करके गलती की है । उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित उन निष्कर्षों में, जो साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् निकाले गए थे, जो कि प्रथम अपील न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनुज्ञेय था, हस्तक्षेप करके तात्विक रूप से गलती की है, । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अकाट्य कारण दिए गए थे । प्रथम अपील न्यायालय ने तथाकथित संदेहास्पद परिस्थितियों पर विस्तारपूर्वक विचार किया, जिन पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा महत्व दिया गया था और इसके पश्चात् उसने यह निष्कर्ष निकाला कि वसीयत, जो कि एक रजिस्ट्रीकृत वसीयत थी, वास्तविक थी और किन्हीं संदेहास्पद परिस्थितियों से ग्रस्त नहीं थी । प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को इसमें इसके ऊपर उद्धृत किया गया है । अतः, उच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील का विनिश्चय करते हुए आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित करते समय अपनी अधिकारिता से परे कार्य किया है ।

29. जैसा कि इसमें इसके ऊपर मत व्यक्त किया गया है और जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अनुसार भी,

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील को ग्रहण करने संबंधी उच्च न्यायालय की अधिकारिता केवल ऐसी अपीलों तक सीमित है जिनमें विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित होता है । उच्च न्यायालय द्वारा विरचित विधि के सारवान् प्रश्नों का परिशीलन करने पर हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील का विनिश्चय करते समय विरचित किए गए विधि के प्रश्नों को विधि के सारवान् प्रश्न बिल्कुल भी नहीं कहा जा सकता है । उच्च न्यायालय द्वारा विरचित विधि के सारवान् प्रश्न निम्नलिखित रूप में हैं :-

> "(i) क्या अपील न्यायालय, विचारण न्यायालय के विनिर्दिष्ट निष्कर्ष का उल्लेख किए बिना विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को उलट सकता है ?
>
> (ii) क्या विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय अनुचित है और वह साक्ष्य के गलत पठन का परिणाम है ?"

उपर्युक्त प्रश्नों को बिल्कुल भी विधि के सारवान् प्रश्न नहीं कहा जा सकता है । इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है और वह अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है । इस प्रक्रम पर, **मदामांची रामप्पा** बनाम **मुथालुरू बोजप्पा**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश करना आवश्यक है । इस न्यायालय ने उपर्युक्त विनिश्चय में निम्न प्रकार मताभिव्यक्ति की और अभिनिर्धारित किया है :-

> "जब कभी इस न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उच्च न्यायालय ने किसी द्वितीय अपील पर कार्यवाही करते हुए, या तो अनजाने में और आकस्मिक रीति में या जानबूझकर, जैसा कि इस मामले में किया गया है, धारा 100 द्वारा विहित सीमाओं का उल्लंघन किया है तब इस न्यायालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उसमें हस्तक्षेप करे और उक्त उपबंधों को प्रभावी करे । यह हो सकता है कि कुछ मामलों में, उच्च न्यायालय द्वितीय

---

[1] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1633.

अपील पर विचार करते समय वह दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य हो जिसे वह न्याय मानता है या जहां तथ्य संबंधी न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्य संबंधी निष्कर्षों द्वारा मामले के साम्या की पूर्ति नहीं हुई है; किन्तु ऐसे अवसरों पर यह स्मरण रखना आवश्यक है कि न्यायालयों द्वारा जो निर्णय दिया जाता है वह विधि के अनुसार न्याय है और उचित व्यवहार और साम्या की विचारणाएं, चाहे वे कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हों, विधि के स्पष्ट और अभिव्यक्त उपबंधों के अनुरूप होनी चाहिएं । यदि उच्च न्यायालय, द्वितीय अपीलों में अपने निष्कर्षों पर पहुंचते समय धारा 100 के स्पष्ट उपबंधों का उल्लंघन करता है तो वह ऐसे विनिश्चयों से अपरिहार्य रूप से क्षुब्ध करने वाली अननुमेयता का तत्व पुरःस्थापित करेगा जो कि आमतौर पर जुएं से जुड़ा होता है; और वह एक ऐसी भर्त्सना है जिससे बचने का न्यायिक प्रक्रिया को निरन्तर और ईमानदारी से प्रयत्न करना चाहिए ।"

30. अतः, हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने का यह एक उपयुक्त मामला है क्योंकि, जैसा कि इसमें इसके ऊपर मत व्यक्त किया गया है, उच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील को मंजूर करते समय अपनी अधिकारिता से परे कार्य किया है ।

31. उपर्युक्त दृष्टि से और ऊपर कथित कारणों से हम इस अपील को मंजूर करते हैं, उच्च न्यायालय द्वारा 1985 की सिविल नियमित द्वितीय अपील सं. 2191 में पारित तारीख 27 नवम्बर, 2007 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हैं और विद्वान् जिला न्यायाधीश, संगरूर द्वारा तारीख 29 फरवरी, 1983 की सिविल अपील सं. 27 में पारित तारीख 6 जून, 1985 के निर्णय और आदेश को प्रत्यावर्तित करते हैं और परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी द्वारा, जो इस मामले में मूल वादी है, फाइल किए गए वाद को खारिज करते हैं । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

32. प्रस्तुत निर्णय को समाप्त करने से पूर्व, हम उच्च न्यायालय

को यह स्मरण कराते हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन किसी अपील में उच्च न्यायालय की अधिकारिता यथार्थतः उसी मामले तक सीमित है जिसमें विधि का सारवान् प्रश्न अंतर्वलित होता है और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील का विनिश्चय करते समय उच्च न्यायालय के लिए अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करना और निचले न्यायालयों और/या प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना अनुज्ञेय नहीं है और यदि प्रथम अपील न्यायालय ने न्यायिक रीति में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया है तो उसके विनिश्चय के बारे में यह अभिलिखित नहीं किया जा सकता है कि वह विधि या प्रक्रिया संबंधी किसी ऐसी त्रुटि से ग्रस्त है जिसके कारण द्वितीय अपील में उसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है । हमने यह अवेक्षा की है और जैसा कि इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों के बावजूद इस न्यायालय द्वारा बारंबार और **नारायणन् राजेन्द्रन** बनाम **लक्ष्मी सरोजिनी**[1] वाले मामले में भी और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 की आज्ञा के अनुसार, उच्च न्यायालय, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन विधि का या तो सारवान् प्रश्न विरचित किए बिना या विधि का गलत सारवान् प्रश्न विरचित करके तथ्य संबंधी समवर्ती निष्कर्षों और/या प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में फेरफार कर रहे हैं ।

33. अतः, हम उपर्युक्त रूप में मत व्यक्त करने और उच्च न्यायालयों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन सीमाएं स्मरण कराने के लिए बाध्य हैं और पुनः यह आशा करते हैं कि उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में हस्तक्षेप करने से पूर्व विधिक स्थिति को ध्यान में रखेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

---

[1] (2009) 5 एस. सी. सी. 264.